भक्ति काल : स्वर्ण युग

डॉ. नीरज कुमार द्विवेदी
असि. प्रो., हिन्दी विभाग
दयानन्द वैदिक (पी.जी.) कॉलेज
उरई (उ.प्र.)

................समूचे भारतीय साहित्य में अपने ढंग का अकेला साहित्य है, इसी का नाम भक्ति साहित्य हैं। यह एक नई दुनिया है।

—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

विपुल भाव, भाषा—गरिमा—संपन्न मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का 'पूर्व मध्ययुग' भक्तिकाल की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। अपने शाब्दिक प्रतिपाद्य को प्रस्तुत करने वाले इस युग में भक्तिपरक रचनाओं की बहुलता उपलब्ध होती है। हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल संवत् 1375 से 1700 तक माना जाता है। वस्तुतः इस काल में इस्लामी संस्कृति, सभ्यता और शासन द्वारा आच्छादित तत्कालीन हिन्दू जाति संस्कृति एवं समाज, सभ्यता—पराभव—हीनता और असफलता की नाजुक स्थिति से गुजर रही थी। ऐसी विषम परिस्थिति में हताश हिन्दू जनता के विक्षुब्ध हृदय को लोकरंजक, मर्यादा पुरुषोत्तम, धर्मरक्षक ईश्वर का ही संबल था—अतएव साहित्य रचना भी ऐसी होनी चाहिए थी जो हृदय, मन और आत्मा की भूख एक साथ तृप्त कर सके, परम शक्ति का संचार करने वाली हो, आडम्बरहीन, सुरुचिपूर्ण जीवन की झांकी प्रस्तुत करने वाली हो। भक्तिकालीन साहित्य ऐसा ही था, जो अपनी अनुपमता और विलक्षणता के साथ ही साथ कविता संबंधी दृष्टिकोण, काव्य—सौष्ठव, भावपक्ष, संगीत, भारतीय संस्कृति के यशोगान, सभ्यता के दिग्दर्शन, विभिन्न काव्यरूपों, लोकमंगल, लोकरंजन और भाषा आदि सभी कसौटियों पर अपने पूर्ववर्ती और परवर्ती साहित्य की अपेक्षा अद्वितीय था। अतएव डॉ. श्यामसुंदर दास इस युग हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग मानते हैं—''जिस युग में कबीर, जायसी, सूर, तुलसी जैसे प्रसिद्ध कवियों और महात्माओं की दिव्य वाणी उनके अंतःकरणों से निकलकर देश के कोने—कोने में फैली थी, जिसे साहित्य के इतिहास में सामान्यतया भक्तियुग कहते हैं, वह हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग था।''

दक्षिण भारत में उद्भूत भक्ति की धारा अब तक उत्तर भारत में प्रसार पा चुकी थी। शंकराचार्य का अद्वैतवादी सिद्धांत सर्वोपयुक्त न होने के कारण रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, चैतन्य, माधवाचार्य और बल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, श्री संप्रदाय, द्वैत और शुद्धाद्वैतवाद सिद्धांतों के माध्यम से भक्ति और भगवान, जीव और ब्रह्म तथा माया और जगत आदि की पुनर्विवेचना की। भक्ति एवं साधना मार्ग का निरूपण किया तथा भक्ति की धारा को व्यापक बनाया। स्वामी रामानंद ने विष्णु के रामावतार की भक्ति पर बल दिया, जाति—पांति का भेद मिटाकर, संस्कृत के स्थान पर जनभाषा हिन्दी को अपनाकर उत्तर भारत में रामभक्ति—विशेष रूप से वैष्णव भक्ति को लोकप्रिय बनाया। इस प्रकार ईश्वर संबंधी धारणा के स्वरूप, उपासना पद्धति, दर्शन एवं भक्ति की मनोभावना के भेद के कारण भक्ति एक साथ ही कई धाराओं में बंटकर प्रवाहित हुई। यह विभाजन इस प्रकार है—

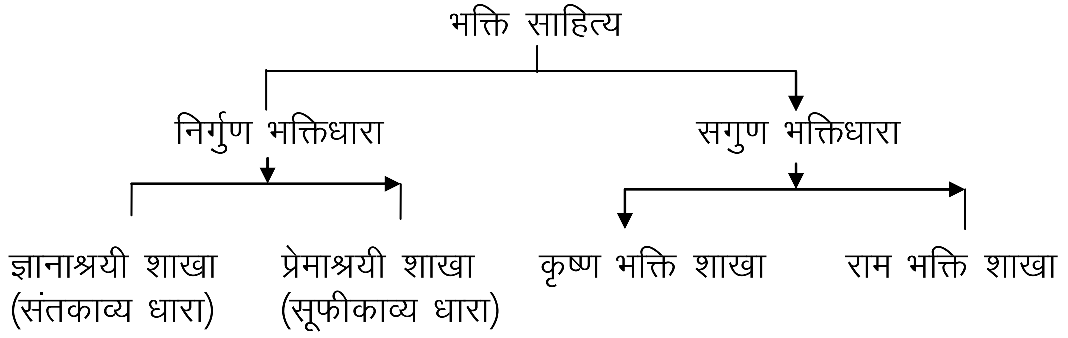

निर्गुण भक्तिधारा :— इस काव्यधारा के अन्तर्गत ईश्वर के प्रति समर्पण और भक्ति पद्धति को ध्यान में रखते हुए दो धाराएं दिखाई पड़तीं हैं—

1. ज्ञानाश्रयी शाखा (सन्तकाव्य धारा) — ईश्वर की रूप, गुण, विशिष्टता के आधार पर सगुण और निर्गुण दो धाराएं बहीं। निर्गुण धारा के अंतर्गत इस्लामी संस्कृति और नवीन परिस्थितियों से उत्पन्न प्रेरणा पाकर संत कवियों कबीर, नानक, रैदास, दादू आदि ने भगवान के निर्गुण रूप को अपनाया तथा सामान्य भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। इनकी रचनाओं में अन्तःसाधना और रागात्मक भक्ति का सुंदर समन्वय है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से उनका काव्य भले ही उच्च कोटि का न हो, किन्तु उसमें हृदय की सच्ची प्रेरणा, अकृत्रिमता, सहज—सौंदर्य, सरलता, अनुभूति विद्यमान है। हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों को एकेश्वरवाद के द्वारा मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा, अवतारवाद, नमाज, कुर्बानी, रोजा आदि की खण्डनात्मक प्रवृत्ति के बल पर उन्होंने एकता के सूत्र में बांधने की चेष्टा की। मन में निहित अंधकार पर कबीर का मंतव्य कितना दिव्य है — वह पाठक की हृदय तंत्री को झकझोर देता है —

पंडित और मसालची दोनों सूझे नाहीं।
औरन को कर चांदना आप अंधेरे माही।।

कहीं—कहीं इनकी सहज भाषा में अलंकारों का उत्कृष्ट प्रयोग भी दृष्टिगत होता है। किस प्रकार उसमें कृत्रिमता से परे सहज आलंकारिक सौन्दर्य विद्यमान है—

नैनों की कर कोठरी पुतली पलंग बिछाए।
पलकों की चिक डारिके पिया को लियो रिझाए।।

2. प्रेमाश्रयी शाखा (सूफीकाव्य धारा) — संत कवियों की तरह हिन्दू और मुसलमानों के बीच पारंपरिक मनोमालिन्य, संघर्ष और विरोध को मिटाने का प्रयत्न सूफी सन्त भी कर रहे थे और दोनों के बीच रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास तथा लौकिक प्रेम कथाओं के माध्यम से ईश्वरीय अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति अपनी रचनाओं द्वारा कर रहे थे। कुतुबन, मंझन, जायसी, उस्मान आदि ने अपनी रचनाओं में हिन्दू—मुस्लिम संस्कृतियों का सुंदर समन्वय किया, प्रेम तत्व को प्रधानता देकर काव्य को सरस और मनोरम बनाया। साथ ही साथ अवधी भाषा को एवं दोहा—चौपाई छन्दों को अपनाकर तुलसीदास की महान कृति रामचरितमानस का मार्ग प्रशस्त किया।

सगुण भक्तिधारा :— इस काव्यधारा के अन्तर्गत ईश्वर के सगुण स्वरुप, उनके सानिध्य और भक्ति पद्धति को ध्यान में रखते हुए दो धाराएं दिखाई पड़तीं हैं—

1. रामभक्ति शाखा — सगुण रूप अपनाने वालों में दो शाखाएं हुईं — रामभक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखा। पहले के प्रमुख आचार्य रामानन्द और कवि तुलसीदास हुए, और दूसरे के प्रमुख आचार्य बल्लभ, चैतन्य, सूर और रसखान आदि हुए। रामभक्ति शाखा वालों ने राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में तथा उनके चरित्र में अनन्त सौन्दर्यशील शक्ति का समन्वय कर उन्हें धर्मरक्षक, लोकरक्षक के रूप में प्रस्तुत किया, जिसमें मानव जीवन को आत्मसात करने की पूर्ण क्षमता है तथा सुख—दुःख, अनुराग—विराग और आशा—निराशा के क्षणों में हम राम का सहारा कर सकते हैं। वस्तुतः रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि तुलसीदासजी सनातन हिन्दू धर्म के ऐसे धवल रत्न हैं जिनमें भारतीय संस्कृति और मानव धर्म दोनों का समन्वय एक साथ विद्यमान है। उन्हीं के शब्दों में —

जड़ चेतन जग जीव जन सकल राममय जानि।
बन्दऊं सबके पद कमल सदा जोरि जुग पानी।।

भक्तिकाल को स्वर्ण युग बनाने में तुलसी का प्रदेय अतीव महत्वपूर्ण है। वस्तु—विषय की सम्प्रेषण—साधना या अभिव्यंजना के दोनों पहलू उपयुक्त पदचयन, जीवन्त वाक्य संगठन और प्रकृति शैली आदि सभी अपने में बेजोड़ हैं। उपयुक्त पदचयन का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

सबके हृदय मदन अभिलाषा।
लता निहारि नवहि तरु शाखा।।

इस प्रकार तुलसी का सारा प्रयास हर दृष्टि से अनुपमेय है। अनेक विचारकों के अनुसार अकेले तुलसी ही भक्तिकाल को स्वर्ण युग बनाने में समर्थ हैं। तुलसी ने तत्कालीन हतचेतन समाज में नवीन प्राण का जो संचार किया है–वह सदा–सर्वदा हमारा आत्मत्राण करता रहेगा।

2. कृष्णभक्ति शाखा – राम भक्तों की ही भांति कृष्ण भक्त कवियों ने भी हिन्दी साहित्य को स्वर्ण युग बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। कृष्ण की भक्ति में प्रेम शक्ति, सच्चे भाव और माधुर्य भाव की प्रधानता थी। कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों ने प्रेमलीलाओं के सुंदर, सरस और मादक चित्र प्रस्तुत करते हुए वात्सल्य और श्रृंगार का भी सफल वर्णन किया है। कृष्ण की बाललीलाओं में केवल बाह्य चेस्टाओं और शारीरिक सौन्दर्य का ही नहीं बल्कि अन्तःप्रकृति का भी सुंदर उद्घाटन हुआ है, जैसे

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।
मो सों कहत मोल को लीनो, तू जसुमति कब जायो।।

माधुर्य भाव के अंतर्गत संयोग और वियोग श्रृंगार का सुंदर चित्रण है। राधाकृष्ण के प्रथम मिलन का चित्र देखिए–

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहां रहति, का की तू बेटी–कबहु नाहिं लखत बृजखोरी।।

गोपियों के हृदय की व्याकुलता, दैन्य, आशंका, नैराश्य, चिन्ता, उत्कण्ठा आदि अगणित मनोभावों की व्यंजना सुंदरता के साथ विरह के प्रसंगों में हुई है। एक बार मिलकर सदा के लिए बिछड़ना जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है–

मिलि बिछुरे की पीर कठिन है, कहै न कोऊ माने।
मिलि बिछुरे की पीर सखी री बिछुर्यो होई सो जाने।।

सीधी–सादी आडंबरहीन भाषा में हृदय की गहरी अनुभूति की व्यंजना मीरा के पदों की सबसे बड़ी विशेषता है। अष्टछाप के कवि, हितहरिवंश, रसखान आदि सभी ने कृष्ण काव्य को अपने हृदय की सच्ची अनुभूति, माधुर्य भाव की भक्ति, भावना एवं विरह की तीव्र वेदना से अभिभूत कर दिया। ब्रजभाषा को भी साहित्यिक स्तर पर बिठाने, परिमार्जित और प्रौढ़ बनाने में इन कवियों का विशेष योगदान रहा। निर्गुण और सगुण धाराओं में प्रवाहित होने वाला यह काव्य गुणवत्ता और परिमाण दोनों दृष्टियों से अत्यंत समृद्ध है। काव्य विधाओं के आधार पर भी इसको हम अन्य कालों के काव्य से अधिक समृद्ध पाते हैं।

काव्य शिल्प

काव्य शिल्प की दृष्टि से भक्तिकाल की प्रभूत सराहना की जाती है। यद्यपि भक्त होने के कारण भक्तिकालीन कवियों का मूल प्रेरणास्रोत राम, कृष्ण का काव्य, शास्त्र न होकर भक्ति भाव ही था। किंतु सत्य यह है कि कुछ संत कवियों को छोड़कर प्रेमाख्यान काव्य, रामकाव्य और कृष्ण काव्य में उच्चकोटि का काव्यशिल्प विद्यमान है। इन कवियों को काव्यशास्त्र का प्रचुर ज्ञान था।

भक्तिकालीन कवियों में राजशेखर द्वारा काव्यमीमांसा में बताए गए तीनों प्रकार– काव्य कवि, शास्त्र कवि, उभय कवि–के कवियों की बहुलता देखी जा सकती है। यह विशेष रूप से प्रलक्ष्य है कि इन कवियों का मूल उद्देश्य यद्यपि भक्ति निरूपण था तथापि शुद्ध काव्य सिद्धांत की दृष्टि से विचार किया जाए तो भी इनका काव्य उत्कृष्ट कोटि का ठहरता है।

इन भक्तिकालीन कवियों ने प्राचीन काव्यशास्त्र के उत्कृष्ट विचारक मम्मट एवं अन्य आचार्यों द्वारा निर्धारित लक्ष्य–अर्थ, काम, यश, व्यवहार ज्ञान, अमंगल निवारण, सद्यःपरिनिवृत्ति तथा पुरुषार्थ चतुष्टय आदि की प्राप्ति माना है। यही कारण है कि इनकी तुलना में रीतिकालीन काव्य प्रयत्न सापेक्ष्य सा प्रतीत होता है। अलंकार निरूपण के ही क्षेत्र में भक्ति रत्न तुलसी आदि कवियों की उपमाएं विचित्र, सहज, मर्यादापूर्ण, औचित्य एवं सुरुचि से युक्त हैं–जो अपने पाठक की हृदयतंत्री को झंकृत करने में पूर्ण समर्थ हैं, यथा

तुलसी परिहरि हरिहिं–पामर पूजहिं भूत।
अन्त फ़जीहत होहिंगे–गनिका के से पूत।।

काव्य विधाएं

यह काल अन्य कालों की अपेक्षा काव्य की विविध विधाओं में सृजनात्मक साहित्य के लिए भी स्मरणीय है। इस काल में 'प्रबंध काव्य' जैसे–पद्मावत, रामचरितमानस; मुक्तक काव्य जैसे–सूर, मीरा के पद; सूक्ति काव्य–कबीर की साखियां; संगीत एवं गेय काव्य– सूर, मीरा, तुलसी के पद और विनय पत्रिका; नाटक–हृदयराम कृत हनुमन्न नाटक, प्राणचंद चौहान कृत रामायण महानाटक; कथा काव्य चौंतीस वैष्णवन की वार्ता; नीति काव्य–मनोहर कवि कृत प्रश्नोत्तरी, रहीम के दोहे आदि; श्रृंगार काव्य–मोहन कृत केलीकल्लोल, कलानिधि कृत श्रृंगार रस; टीका ग्रंथ भक्तमाल कृत 'प्रियादास' एवं काव्यशास्त्रीय ग्रंथ इत्यादि सभी विधाएं प्राप्त हैं। इस प्रकार इस दृष्टि से भक्तिकाल अनूठा और अद्वितीय है। सगुण भक्ति धारा के अधिकांश कवि संगीत के भी अच्छे जानकार थे। काव्य में संगीतात्मकता का संन्निवेशन। अष्टछाप के कृष्ण भक्त कवि अपने उपास्य की प्रेममयी लीलाओं का आनंद विभोर होकर अभिनय करते थे। रासलीला, रामलीला, मीराबाई अपने प्रभु के समक्ष नृत्य किया करती थीं।

अब हम हिन्दी साहित्य के अन्य काल यथा आदिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल के परिप्रेक्ष्य में भक्तिकाल के स्वर्णयुगत्व की समीचीनता पर विचार करेंगे।

भक्तिकाल बनाम् आदिकाल

स्वर्ण युग की कसौटी पर जब हम आदिकाल को रखते हैं तो यह काल तुलना में हर स्तर पर बड़ा सीमित प्रतीत होता है। आदिकालीन वीरगाथाओं की संकुचित राष्ट्रीयता, सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य, अपभ्रंश प्रभावित साहित्य तथा अन्य सभी प्रकार के साहित्य की शिल्पगत एवं भावगत उपलब्धि इस कोटि की नहीं बन पाई है कि उसे स्वर्ण युग की ऊँची उपाधि से संबोधित किया जाए।

भक्तिकाल बनाम् रीतिकाल

जहां तक रातिकाल का प्रश्न है, कतिपय विद्वान उसे स्वर्णयुग की संज्ञा प्रदान करते हैं। उनके अनुसार समस्त रीतिबद्ध, रीतिमुक्त एवं अन्य स्फुट रीतिकाव्य–काव्यशास्त्रीय सौन्दर्य, तत्वगुणवत्ता एवं परिमाण सभी दृष्टियों से विशद एवं महत्वपूर्ण है। इस काल ने घोर पराभव के युग में समाज के अभिशप्त जीवन में जिस सरसता का संचार किया है, वह अपने में अपूर्व है। यही नहीं 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' की कसौटी पर जीवन में सरसता का मूल्य नगण्य नहीं है। हिन्दी में काव्यशास्त्र की परंपरा को अवतरित करने का श्रेय इन्हीं कवियों को है। इस काल का परिपुष्ट श्रृंगार प्रत्येक काल को स्पंदित करता रहेगा।

यह सब होते हुए भी 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' वाले देश में नारी को पूज्यापद से हटाकर वासना मूर्ति जैसे कुत्सित पद पर बिठाने वाले, नायक–नायिका के गर्हित कामोत्पादक चित्र को चित्रित कर उसे संकुचित बनाने वाले तथा नैतिक मूल्यों पर वज्रपात कर कवि–शिक्षा प्रदान करने वाले इस युग में सूर और मीरा जैसी आत्मा की पुकार कहीं खोजने से नहीं मिल सकती है और न ही जायसी तथा तुलसी के विशिष्ट महाकाव्यों के समान व्यापक जीवन समीक्षा का दर्शन ही संभव है। साहित्य द्वारा जीवन उनके भव्य मूल्यों की प्रतिष्ठा की अवतारणा यहां न्यूनातिन्यून ही बन पाई है। अतएव रीतिकाल को स्वर्ण युग की संज्ञा से संबोधित नहीं किया जा सकता।

भक्तिकाल बनाम् आधुनिककाल

आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में स्वर्ण युग की समीचीनता विचारणीय है। वस्तुतः आधुनिक काल प्रत्येक दृष्टि से एक संपन्न काल है, यहां साहित्य की हर विधा पर साहित्य सृजन का कार्य संपन्न हुआ है। गद्य के विकास के साथ जीवन के हर कोने में साहित्यकारों की गति देखी जा सकती है। भारतेन्दु, प्रेमचंद, प्रसाद, आचार्य शुक्ल, महावीर प्रसाद द्विवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रसाद, अज्ञेय प्रभृति की रचनाएं इसका उदाहरण हैं। पद्य के क्षेत्र में भी इस युग की असीम उपलब्धि है–निराला, पंत, प्रसाद, महादेवी, अज्ञेय, मुक्तिबोध, नागार्जुन, शमशेर बहादुर सिंह जैसे कवियों ने हिन्दी के गौरव को निखारा है।

इस प्रकार आधुनिक युग की अपनी एक स्वतंत्र गरिमा है और गद्य व पद्य का ऐसा बेजोड़ विकास किसी अन्य काल में नहीं हुआ है। परंतु इसमें स्थायित्व नहीं है। यह अभी विकसनशील अवस्था में है। अतः इसके बारे में किसी भी निर्णय पर पहुंचना सम्भवतः जल्दबाजी होगी। इसीलिए इसे स्वर्ण युग जैसी किसी संज्ञा से अभिहित नहीं किया जा सकता।

भक्ति काल : स्वर्ण युग

सांप्रदायिकता–संकीर्णता या मत पंथों से असम्पृक्त तथा मानवतापरक काव्य रचना करने वाले अद्‌भुत सार्वजनिक हितसाधक, वसुधैव कुटुंबकम के परिपोषक भक्तिकाल के प्रायः सभी प्रख्यात कवि शास्त्र और संप्रदाय की सीमा में पंगु मानवता की कल्पना से सर्वथा मुक्त हैं। मानव जाति के बंधन मोचन का बीड़ा उठाने वाले इन कवियों ने 'मनस्वी कार्यार्थी न गणपति सुखं न च दुखम्' को हार्दिक धरातल पर अपनाकर द्वेष, वैमनस्य, छल, कपट तथा पाखंड आदि से मुक्त स्वयं अनुभूत जीवन पर बल दिया है। मानवतावाद की स्थापना के लिए कष्ट, सहिष्णुता, तितिक्षा कातरता और अपरिग्रह की नितांत आवश्यकता है–ये दिव्य गुण हमारे समाज के कालजयी, समाज–समर्पित प्रत्येक संत कवि में पूरी ऊंचाई के साथ विद्यमान हैं। बेचारे कबीर को बोधभ्रमित संसार की विचित्र स्थिति पर किस प्रकार फूट–फूट कर रोना पड़ा है–वह पाठक को बलात् आकृष्ट करता है–

सुखिया सब संसार है, खावे अरु सोवे।
दुखिया दास कबीर है जागे अरु रोवे।।

यही नहीं – 'परहित सरिस धरम नहिं भाई, पर पीड़ा सम नहिं अधमाई' में क्या संसार के प्रति एक प्राणी की जिम्मेदारी नहीं लक्षित है। सचमुच इन कवियों की कविता में दिव्य भारतीय संस्कृति विराजमान है; भक्तिकाल का यह मानवतावाद भी उसे स्वर्ण युग बनाने में सक्षम है।

भक्तिकाव्य को स्वर्ण युग बनाने में काव्य के माध्यम से रागात्मक सम्बन्ध (भावात्मक एकता) लाने का जो भव्य प्रयास किया गया, वह स्तुत्य है। यहां हिन्दू–मुस्लिम संस्कृतियों के समन्वय का प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रयास है। यही नहीं भक्तिकाल, गीता से लेकर गांधीवाद और आज तक के समस्त संत सिद्धांतों को अपनी गोद में खिला रहा है। लोक के आत्मविश्वास को जगाया; सन्यासवाद, पलायनवाद के विरुद्ध संघर्ष की प्रेरणा दी उपेक्षित वर्ग, अवर्णों, असवर्णों तथा स्त्रियों को समाज में उचित स्थान दिलाया। 'कविता का प्रतिसंसार' पुस्तक में प्रख्यात आलोचक डॉ. निर्मला जैन भक्तिकाल के सम्बन्ध में लिखती हैं कि मध्यकाल के भक्ति साहित्य का सबसे बड़ा योगदान यही है कि उसने उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक भावात्मक एकता कायम करने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई। उस समय के संपूर्ण भारतीय साहित्य में आश्चर्यजनक समानता है। डॉ. जैन के अनुसार यह समानता केवल संयोगजन्य और आकस्मिक नहीं है बल्कि पारस्परिक जानकारी और आदान–प्रदान का प्रतिफल है। भक्ति आन्दोलन ने देश और प्रदेश को, राष्ट्र और जाति को, नगर और गांव को एक भावात्मक और सांस्कृतिक भूमि पर ला खड़ा किया। इसकी व्यापक लोकप्रियता और सामर्थ्य का यही रहस्य है।

इस प्रकार भक्तिकालीन सभी कवि प्रायः माया मुक्त, उपकार समर्पित, परिग्रह सीमा से परे संत कवि हैं, जिनका आचरित संतत्व उनकी हर पंक्ति में बोल रहा है। साईं के सब जीवों के लिए अपना अस्तित्व समर्पित करने वाले कबीर की बराबरी क्या देखी जा सकती है? ''सिया राममय सब जग जानी'' का व्यवहारिक उद्‌घोष क्या किसी सुधी समीक्षक को आकर्षित नहीं करता है? भक्तिकालीन कवि चाहे वह सूर हो या तुलसी, कबीर हो या जायसी–अनुभूति की सच्चाई, कला–सौंदर्य तथा चित्रण की अन्य विशेषताएं यथा प्रकृति चित्रण आदि की दृष्टि से तो सर्वाधिक आगे है ही, साथ ही साथ हमारी संस्कृति के आध्यात्मिक, राजनीतिक, पारिवारिक, आर्थिक, नैतिक तथा सामाजिक आदि सभी संदर्भों का वरेण्य विश्लेषक है। इन कवियों की प्रत्येक पंक्ति में पुनीत आत्मा की ऐसी सुगन्ध है जो समस्त सृजनात्मक वातावरण को सुगन्ध से आपूरित कर देती है। सचमुच परिमाण, गुणवत्ता और शास्त्रीय सौंदर्य सभी दृष्टि से भक्ति साहित्य अद्वितीय है। धन्य है वह काल जहां कि समस्त साधना ही

कीरति भनिति भूति भल सोई
सुरसरि सम सब कंह हित होई।

जैसी दिव्य है। वस्तुतः भक्तिकाल में इहलोक और परलोक के समन्वय की अनूठी व्यवस्था है।

इस काल के प्रमुख कवियों ने स्वयं अपने भौतिक जीवन में विषपान कर हम सबको जो अमृत भेंट किया है–उसकी जितनी भी सराहना की जाए, कम है। आज भी इन कवियों की रचनाओं का हिन्दी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान है। डॉ. गणपति चंद्रगुप्त का कथन है कि ''भक्ति काव्य की सबसे बड़ी

विशेषता यह है कि वह विद्वानों और अशिक्षित दोनों के ही ह्रदय को समान रूप से प्रभावित करता है। बड़े से बड़ा दर्शनिक भी भक्ति साहित्य को लेकर अपने मस्तिष्क की पिपासा को शांत कर सकता है, तो दूसरी ओर गांव का एक अनपढ़ साधारण व्यक्ति भी सूर, तुलसी और मीरा की पंक्तियों को गुनगुना कर अपने को आप्लावित कर सकता है।

भारतीय संस्कृति के सभी तत्व आचार–विचार, रीति–रिवाज, परोपकार, अहिंसा, सत्य, कर्तव्य, शील एवं मर्यादा और इन सब के मूल में व्यापक लोकमंगल दृष्टि का परिचय भक्ति काव्य में मिलता है। वह निषेध नहीं; अपितु आस्था का साहित्य है। आस्था, व्यक्ति और समाज को सदैव उद्‌बुद्ध करती है और मूल रूप से यही भक्ति काव्य की सांस्कृतिक देन भी रही है। प्रेरणा और प्रभाव की दृष्टि से इसकी प्रासंगिकता इसके रचना संसार के विभिन्न स्रोतों, उद्देश्यगत सार्थकता, अनुभूतिगत उदात्तता, अभिव्यक्तिमूलक प्रांजलता के आधार पर स्पष्ट होती है। तुलसी के शब्दों में भक्ति काव्य का आदर्श है–

सूधे मन, सूधे वचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल विधि रघुवर प्रेम प्रसूति।।

भक्ति काव्य की सर्वोच्च सांस्कृतिक देन है–उसका व्यापक मानवतावादी जीवन दर्शन एवं लोक कल्याण की भावना। अन्य सभी विशेषताएं इसी पर आधारित हैं। मानव जीवन के सर्वोच्च आदर्श 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' का मनोरम सामंजस्य भक्तिकाव्य में मिलता है। भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति और सभ्यता, आचार–विचार सभी कुछ तथा सगुण–निर्गुण भक्ति, योग, दार्शनिकता, आध्यात्मिकता और आदर्श जीवन के भव्य चित्र सभी कुछ भक्तिकाव्य के सुदृढ़ और सुंदर कलेवर में सुरक्षित हैं। संस्कृति के दो पक्ष हैं आचार और विचार। भक्त कवियों ने दोनों पक्षों को प्रभावित किया।

अस्तु! भक्तिकालीन साहित्य कला एवं भाव का कल्पवृक्ष है। मानव समाज में नवीन चेतना का संचार करने के लिए इन कवियों के पास ऐसी रचनात्मक ऊर्जा विद्यमान है जिसे नित्य नूतन उपलब्धि की हम कदम–कदम पर अपेक्षा कर सकते हैं। सचमुच इस काल की अंतर्निहित ऊर्जा अनूठी एवं मूल्यांकन परिधि से परे है। निस्संदेह यह काल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग है।

NAME OF THE TEACHER	**:**	**DR. NEERAJ KUMAR DWIVEDI**
MOBILE NUMBER	:	9451408948, 7905531417
E MAIL	:	neerajdwivedi71@gmail.com
DESIGNATION	:	ASSISTANT PROFESSOR
UNIVERSITY NAME	:	BUNDELKHAND UNIVERSITY, JHANSI
COLLEGE NAME	:	DAYANAND VEDIC COLLEGE, ORAI(JALAUN), UP
STREAM NAME	:	ARTS
FACULTY NAME	:	ARTS
DEPARTMENT NAME	:	HINDI
SUBJECT NAME	:	HINDI
COURSE	:	B.A.
COURSE DURATION	:	3 YEARS
SUBTOPIC NAME	:	भक्ति काल : स्वर्ण युग
CONTENT TYPE	:	NOTES
SEARCH KEYWORD	:	भक्तिकाव्य, स्वर्णयुग, सगुण–निर्गुण, कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, भारतीय संस्कृति और भक्तिकाल, मानवतावादी जीवनदर्शन, लोकरंजन, नवीन चेतना, सांप्रदायिकता–संकीर्णता